जंगल और जनकपुर

0645CH02

राजमहल से निकलकर महर्षि विश्वामित्र सरयू नदी की ओर बढ़े। दोनों राजकुमार साथ थे। उन्हें नदी पार करनी थी। आश्रम पहुँचने के लिए। विश्वामित्र ने अयोध्या के निकट नदी पार नहीं की। दूर तक सरयू के किनारे-किनारे चलते रहे। दक्षिणी तट पर। उसी तट पर, जिस पर अयोध्या नगरी थी।

वे चलते रहे। नदी के घुमाव के साथ-साथ। राजमहल पीछे छूट गया। उसकी आखिरी बस्ती भी निकल गई। चलते-चलते एक तीखा मोड़ आया तो सब कुछ दृष्टि से ओझल हो गया।

राम और लक्ष्मण ने एक बार भी पीछे मुड़कर नहीं देखा। उनकी नज़र सामने थी। महर्षि विश्वामित्र के सधे कदमों की ओर। सूरज की चमक धीमी पड़ने लगी। शाम होने को आई। राजकुमारों के चेहरों पर थकान का कोई चिह्न नहीं था। उत्साह था। वे दिन भर पैदल चले थे। और चलने को तैयार थे।

महर्षि अचानक रुके। उन्होंने आसमान पर दृष्टि डाली। चिड़ियों के झुंड अपने बसेरे की ओर लौट रहे थे। आसमान मटमैला-लाल हो गया था। चरवाहे लौट रहे थे। गायों के पैर से उठती धूल में आधे छिपे हुए।

"हम आज रात नदी तट पर ही विश्राम करेंगे," महर्षि ने पीछे मुड़ते हुए कहा। दोनों राजकुमारों के चेहरे के भाव देखते हुए विश्वामित्र हलका-सा मुसकराए। राम के निकट आते हुए उन्होंने कहा, "मैं तुम दोनों को कुछ विद्याएँ सिखाना चाहता हूँ। इन्हें सीखने के बाद कोई तुम पर प्रहार नहीं कर सकेगा। उस समय भी नहीं, जब तुम नींद में रहो।"

राम और लक्ष्मण नदी में मुँह-हाथ धोकर लौटे। महर्षि के निकट आकर बैठे। विश्वामित्र ने दोनों भाइयों को 'बला-अतिबला' नाम की विद्याएँ सिखाईं। रात में वे लोग वहीं सोए। तिनकों और पत्तों का बिस्तर बनाकर। नींद आने तक महर्षि उनसे बात करते रहे।

सुबह हुई। यात्रा फिर शुरू हुई। मार्ग वही था। सरयू नदी के किनारे-किनारे।

चलते-चलते वे एक ऐसी जगह पहुँचे, जहाँ दो नदियाँ आपस में मिलती थीं। उस संगम की दूसरी नदी गंगा थी। महर्षि अब भी आगे चल रहे थे। लेकिन एक अंतर आ गया था। राम-लक्ष्मण अब दूरी बनाकर नहीं चलते थे। महर्षि के ठीक पीछे थे ताकि उनकी बातें ध्यान से सुन सकें। रास्ते में पड़ने वाले आश्रमों के बारे में। वहाँ के लोगों के बारे में। वृक्षों-वनस्पतियों के संबंध में। स्थानीय इतिहास उसमें शामिल होता था।

आगे की यात्रा कठिन थी। जंगलों से होकर। उससे पहले उन्हें नदी पार करनी थी। रात में ऐसा करना महर्षि विश्वामित्र को उचित नहीं लगा। तीनों लोग वहीं रुक गए। संगम पर बने एक आश्रम में। अगली सुबह उन्होंने नाव से गंगा पार की।

नदी पार जंगल था। घना। दुर्गम। सूरज की किरणें धरती तक नहीं पहुँचती थीं, इतना घना। वह डरावना भी था। हर ओर से झींगुरों की आवाज़। जानवरों की दहाड़। कर्कश ध्वनियाँ। राम और लक्ष्मण को आश्वस्त करते हुए महर्षि ने कहा, "ये जानवर और वनस्पतियाँ जंगल की शोभा हैं। इनसे कोई डर नहीं है। असली खतरा राक्षसी ताड़का से है। वह यहीं रहती है। तुम्हें वह खतरा हमेशा के लिए मिटा देना है।"

ताड़का के डर से कोई उस वन में नहीं आता था। जो भी आता, ताड़का उसे मार डालती। अचानक आक्रमण कर देती। उसका डर इतना था कि उस सुंदर वन का नाम 'ताड़का वन' पड़ गया था।

राम ने महर्षि की आज्ञा मान ली। धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाई। और उसे एक बार खींचकर छोड़ा। इतना ताड़का को क्रोधित करने के लिए बहुत था। टँकार सुनते ही क्रोध से बिलबिलाई ताड़का गरजती हुई राम की ओर दौड़ी। दो बालकों को देखकर उसका क्रोध और भड़क उठा।

जंगल में जैसे तूफ़ान आ गया। विशालकाय पेड़ काँप उठे। पत्ते टूटकर इधर-उधर उड़ने लगे। धूल का घना बादल छा गया। उसमें कुछ दिखाई नहीं पड़ता था। फिर ताड़का ने पत्थर बरसाने शुरू कर दिए। राम ने उस पर बाण चलाए। लक्ष्मण ने भी निशाना साधा। ताड़का बाणों से घिर गई। राम का एक बाण उसके हृदय में लगा। वह गिर पड़ी। फिर नहीं उठ पाई।

विश्वामित्र बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने राम को गले लगा लिया। उन्होंने दोनों राजकुमारों को सौ तरह के नए अस्त्र-शस्त्र दिए। उनका प्रयोग करने की विधि बताई। उनका महत्त्व समझाया।

महर्षि का आश्रम वहाँ से अधिक दूर नहीं था। लेकिन तब तक रात हो चली थी। विश्वामित्र ने वह दूरी अगले दिन तय करने का निर्णय लिया। ताड़का मर चुकी थी। उसका भय नहीं था। तीनों ने रात वहीं बिताई। ताड़का वन में, जो अब पूरी तरह भयमुक्त था।

सुबह जंगल बदला हुआ था। अब वह ताड़का वन नहीं था। क्योंकि ताड़का नहीं थी। भयानक आवाज़ें गायब हो चुकी थीं। पत्तों से गुज़रती हवा थी। उसकी सरसराहट का संगीत था। चिड़ियों की चहचहाहट थी। शांति थी। तसवीर बदल गई थी।

सिद्धाश्रम का अंतिम पड़ाव था–महर्षि का आश्रम। रास्ता छोटा भी था। मनोहारी भी। प्राकृतिक सौंदर्य का आनंद लेते तीनों लोग जल्दी ही आश्रम पहुँच गए। आश्रमवासियों ने उनकी अगवानी की। अभिनंदन किया। उनकी प्रसन्नता दुगुनी हो गई थी। महर्षि विश्वामित्र के आश्रम लौटने की खुशी। राम-लक्ष्मण के आगमन का सुख!

विश्वामित्र यज्ञ की तैयारियों में लग गए। अनुष्ठान प्रारंभ हुआ। आश्रम की रक्षा की ज़िम्मेदारी राम-लक्ष्मण को सौंपकर महर्षि आश्वस्त थे। अनुष्ठान अपने अंतिम चरण में था। पूरा होने वाला था। कुछ ही दिनों में।

पाँच दिन तक सब ठीक-ठाक चलता रहा। शांति से। निर्विघ्न। लगता था कि राजकुमारों की उपस्थिति ने ही राक्षसों को भगा दिया है। राम और लक्ष्मण ने यज्ञ पूरा होने तक न सोने का निर्णय किया। वे लगातार जागते रहे। चौकस रहे। कमर में तलवार। पीठ पर तुणीर। हाथ में धनुष। प्रत्यंचा चढ़ी हुई। हर स्थिति के लिए तैयार।

अनुष्ठान का अंतिम दिन। अचानक भयानक आवाज़ों से आसमान भर गया। सुबाहु और मारीच ने राक्षसों के दल-बल के साथ आश्रम पर धावा बोल दिया। मारीच क्रोधित था। यज्ञ के अलावा भी। इस बात से कि राम-लक्ष्मण ने उसकी माँ को मारा था। ताड़का को।

राम ने राक्षसों का हमला होते ही कार्रवाई की। धनुष उठाया और मारीच को निशाना बनाया। मारीच बाण लगते ही मूर्च्छित हो गया। बाण के वेग से बहुत दूर जाकर गिरा। समुद्र के किनारे। वह मरा नहीं। जब होश आया तो उठकर दक्षिण दिशा की ओर भाग गया। राम का दूसरा बाण सुबाहु को लगा। उसके प्राण वहीं निकल गए। सुबाहु के मरने पर राक्षस सेना में भगदड़ मच गई। वे चीखते-चिल्लाते भागे। कुछ लक्ष्मण के बाणों का शिकार हुए। अन्य जान बचाकर

भाग खड़े हुए। महर्षि विश्वामित्र का अनुष्ठान संपन्न हुआ।

राम ने महर्षि को प्रणाम करते हुए पूछा, "अब हमारे लिए क्या आज्ञा है, मुनिवर?" महर्षि ने राम को गले लगाया। कहा, "हम लोग यहाँ से मिथिला जाएँगे। महाराज जनक के यहाँ। विदेहराज के दरबार में। मैं चाहता हूँ कि तुम दोनों मेरे साथ चलो। उनके आयोजन में हिस्सा लेने। महाराज के पास एक अद्‌भुत शिव-धनुष है। तुम भी उसे देखो।"

राम और लक्ष्मण अगली यात्रा को लेकर उत्साहित थे। नए स्थान देखने और जानने का अवसर! सोन नदी पार कर विश्वामित्र मिथिला की सीमा के पास पहुँचे। अपने शिष्यों और राजकुमारों के साथ। वे गौतम ऋषि के आश्रम से होते हुए नगर में पहुँचे।

राजा जनक ने महल से बाहर आकर विश्वामित्र का स्वागत किया। तभी उनकी दृष्टि राजकुमारों पर पड़ी। विदेहराज चकित रह गए। वे स्वयं को रोक नहीं पाए। महर्षि से पूछा, "ये सुंदर राजकुमार कौन हैं? मैं इनके आकर्षण से खिंचता जा रहा हूँ।"

"ये राम और लक्ष्मण हैं। महाराज दशरथ के पुत्र। मैं इन्हें अपने साथ लाया हूँ। आपका अद्‌भुत धनुष दिखाने।"

विदेहराज ने महर्षि, उनके शिष्यों और राजकुमारों के ठहरने की व्यवस्था की। एक सुंदर उद्यान में। अगले दिन सभी आमंत्रित लोग, ऋषि-मुनि और राजकुमार यज्ञशाला में उपस्थित हुए। वहाँ महर्षि ने फिर धनुष का उल्लेख किया। महाराज जनक ने अपने अनुचरों को आज्ञा दी, "शिव-धनुष को यज्ञशाला में लाया जाए।"

शिव-धनुष सचमुच विशाल था। लोहे की पेटी में रखा हुआ था। पेटी में पहिए लगे हुए थे। आठ पहिए। उसे उठाना लगभग असंभव था। पहियों के सहारे खिसकाकर उसे एक से दूसरी जगह ले जाया जाता था। अनुचर मुश्किल से उसे खींचते हुए यज्ञशाला में ले आए। धनुष देखते ही विदेहराज एक पल के लिए उदास हो गए।

उन्होंने कहा, "मुनिवर! मैंने प्रतिज्ञा की है। अपनी पुत्री सीता के विवाह के संबंध में। जो यह धनुष उठाकर उस पर प्रत्यंचा चढ़ा देगा उसी के साथ सीता का विवाह होगा। अनेक राजकुमारों ने प्रयास किया और लज्जित हुए। उठाना तो दूर, वे इसे हिला तक नहीं सके। प्रत्यंचा क्या चढ़ाते!"

विदेहराज का संकेत समझकर महर्षि विश्वामित्र ने राम से कहा, "उठो वत्स! यह धनुष देखो।"
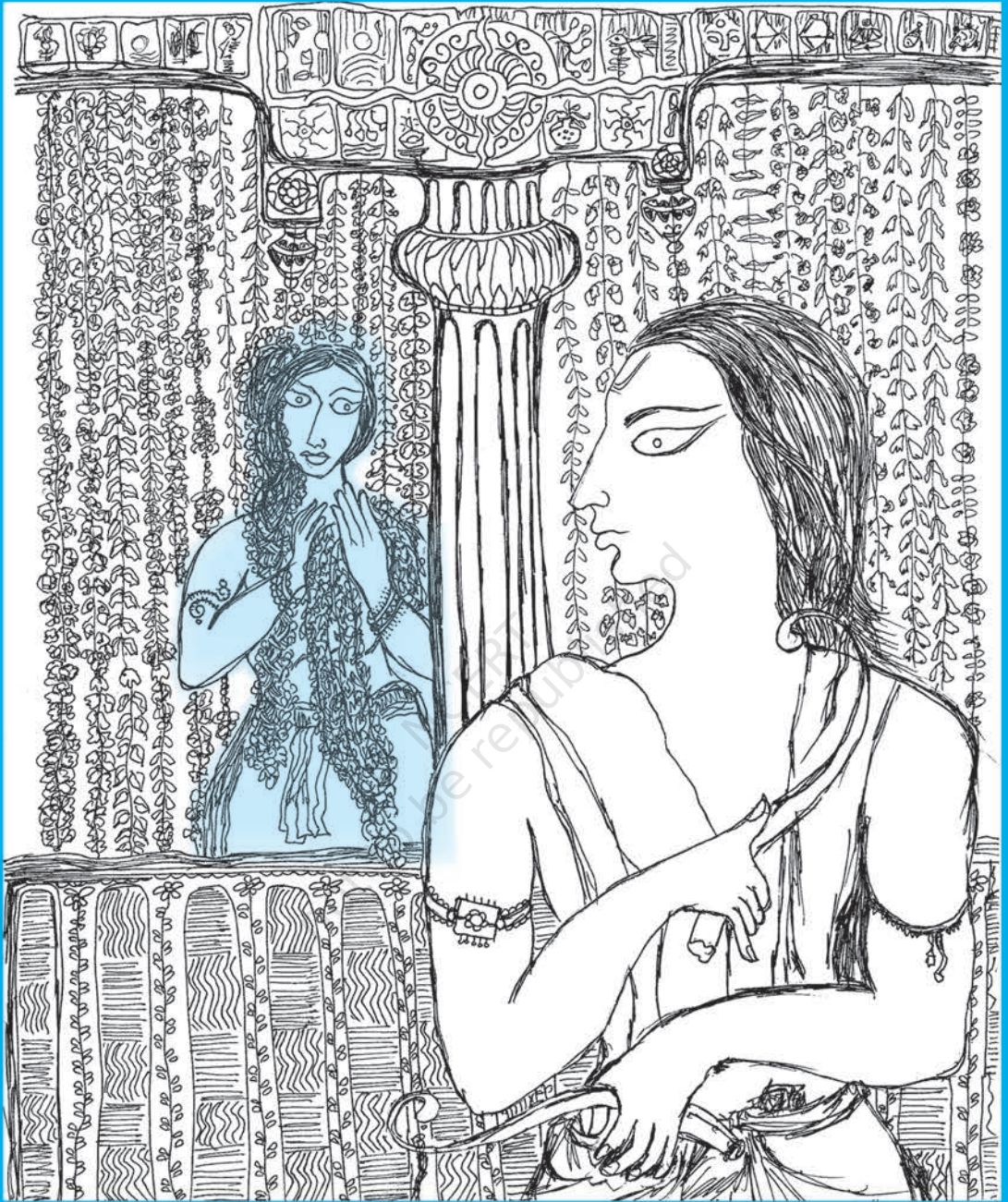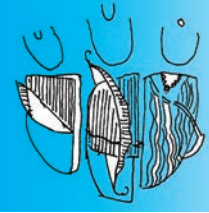
राम ने सिर झुकाकर गुरु की आज्ञा स्वीकार की। आगे बढ़े। पेटी का ढक्कन खोल दिया। राम ने पहले धनुष देखा फिर महर्षि को। गुरु का संकेत मिलने पर राम ने वह विशाल धनुष सहज ही उठा लिया। यज्ञशाला में उपस्थित सभी लोग हतप्रभ थे।

"इसकी प्रत्यंचा चढ़ा दूँ, मुनिवर?" राम ने पूछा।

"अवश्य। यदि ऐसा कर सकते हो।"

विदेहराज चकित थे। राम ने आसानी से धनुष झुकाया। ऊपर से दबाकर प्रत्यंचा खींची। दबाव से धनुष बीच से टूट गया। उसके दो टुकड़े हो गए। बच्चों के खिलौने की तरह। यज्ञशाला में सन्नाटा छा गया। सब चुप थे। एक-दूसरे की ओर देख रहे थे।

सभागार की चुप्पी महाराज जनक ने तोड़ी। उनकी खुशी का ठिकाना न था। उन्हें सीता के लिए योग्य वर मिल गया था। उनकी प्रतिज्ञा पूरी हुई। जनकराज ने कहा, "मुनिवर! आपकी अनुमति हो तो मैं महाराज दशरथ के पास संदेश भेजूँ। बारात लेकर आने का निमंत्रण। यह शुभ संदेश उन्हें शीघ्र भेजना चाहिए।"

महर्षि की अनुमति से दूत अयोध्या भेजे गए। सबसे तेज़ चलने वाले रथों से। इस बीच जनकपुर में धूम मच गई। बारात के स्वागत की तैयारियाँ होने लगीं। नगर की प्रसन्नता चरम पर थी।

महाराज जनक का संदेश मिलते ही अयोध्या में भी खुशी छा गई। आनन-फानन में बारात तैयार हुई। हाथी, घोड़े, रथ, सेना। बारात को मिथिला पहुँचने में पाँच दिन लग गए।

जनकपुरी जगमगा रही थी। हर मार्ग पर तोरणद्वार। हर जगह फूलों की चादर। एक-एक कोना सुवासित। हर घर के प्रवेशद्वार पर वंदनवार। एक-एक घर से मंगलगीत। मुख्यमार्ग पर दर्शकों की अपार भीड़। खिड़कियों और छज्जों से झाँकती महिलाएँ। एक नज़र राम को देख लें। राम-सीता की जोड़ी दिख जाए।

विवाह से ठीक पहले विदेहराज ने महाराज दशरथ से कहा, "राजन! राम ने मेरी प्रतिज्ञा पूरी कर बड़ी बेटी सीता को अपना लिया। मेरी इच्छा है कि छोटी पुत्री उर्मिला का विवाह लक्ष्मण से हो जाए। मेरे छोटे भाई कुशध्वज की भी दो पुत्रियाँ हैं—माँडवी और श्रुतकीर्ति। कृपया उन्हें भरत और शत्रुघ्न के लिए स्वीकार करें।"

राजा दशरथ ने यह प्रस्ताव तत्काल मान लिया।

विवाह के बाद बारात कुछ दिन जनकपुरी में रुकी। बाराती बहुओं को लेकर अयोध्या लौटे तो रानियों ने पुत्र-वधुओं की आरती उतारी। स्त्रियों ने फूल बरसाए। शंखध्वनि से गलियाँ गूँज उठीं। यह आनंदोत्सव लगातार कई दिनों तक चलता रहा।